कोंपलें

प्रेऽम कहानी सखि सुनत सुनावे ऽ ऽ ऽ वे ऽ ऽ

—उमाशशि

सख्त गर्मी थी। बदन में जैसे आग-सी लगी हुई थी। पंखे से भी लू निकल रही थी। रात का कोई ग्यारह बजा होगा। बिस्तरे पर पड़ा मछली की तरह तड़प रहा था, न इस करवट चैन मिलती थी न उस करवट। बिस्तरे पर पानी छिड़का मगर तब भी चैन नहीं, वह पानी मेरी नंगी पीठ को तर क्या करता उल्टे मेरी पीठ जलते तवे की मानिन्द उसे फ़ना कर देती। चार-छ मच्छर उस गर्मी और गर्म मगर तेज हवा में भी अपना काम किये जा रहे थे, नतीजा यह होता कि मैं अपनी उस बौखला-हट की हालत में कभी टखने पर चपत मारता, कभी गाल पर, कभी और कहीं। बदन का कोई हिस्सा खुलाभर मिल जाय। और ये मच्छर भी अब न जाने कैसे होने लगे हैं, जहां काट लेते हैं अठन्नी के बराबर चकत्ता पड़ जाता है और खुजलाते-खुजलाते बुरा हाल हो जाता है, फिर घण्टों वह जगह जलती रहती है। गर्मी से गोया मेरा कुछ कम बुरा हाल हो, मच्छरों

को भी इसी वक्त सारी दुश्मनी निकालने की सूझी। मेरा सारा शरीर जल रहा था गर्मी से और मच्छरों से और दिल जल रहा था.....

....नहीं नहीं, प्रेम से नहीं। सच मानिए यह गर्मी शिवजी के तीसरे नेत्र की तरह कामदेव को झुलस देने के लिए काफी है, और फिर मेरे ये मच्छर कामदेव की लाश पर खड़े होकर उनकी आत्मा की शान्ति के लिए एक से एक अच्छे आर्यसमाजी गीत गायेंगे.....

मेरा दिल जल रहा था इस मरदूद शहर बनारस की रौनक पर जहां के लोग इस गर्मी के आलम में भी एक अँगौछे, गंगाजी, भंग-ठंडई, पान और मनमोहनी जर्दा और 'रतन' या 'शहनाई' के गानों के सहारे गर्मी को ठेंगा दिखाकर मस्त साँड की तरह इधर-उधर टहलते रहते हैं। बनारस में शायद लोग गर्मियों में सोते ही नहीं, क्योंकि रात के किसी पहर में आपकी नींद खुले (आखिर आप तो भले आदमी हैं, रात को सोयेंगे ही, परमात्मा ने रात और बनायी किस लिए है !) आप पायेंगे कि पान और मिठाई की दूकानें खुली हुई हैं, एक-एक हजार कैंडिल पावर के बल्बों से दिन की तरह रोशनी फैली हुई है और कुछ अलमस्त लोग कुर्सियों पर बैठे तानें छेड़ रहे हैं, अगर तानें नहीं छेड़ रहे हैं, तो एक दूसरे को छेड़ रहे हैं गुद-गुदा रहे हैं, दिल्लगियों का बाजार गर्म है और हँसी के फौव्वारे छूट रहे हैं। यहाँ वाले आल्हा-वाल्हा नहीं गाते, शायद ही कोई बौड़म आल्हा गाता हो आल्हा जंगली चीज़ है, यहाँ वालों की ज़बान पर या तो सिनेमाई धुनें चढ़ी हैं या बिरहे और एक से एक नंगे, मादरज़ाद नंगे पूरबी गीत और दादरे और अब तो कजलियों के दिन आ रहे हैं जब रात-रात भर कज-लियों के दंगल होंगे और तमाम लोगों (खासकर रिक्शेवालों और मस्त शहरी साँड़ों) के होठों पर पान की लाली ही की तरह एक से एक रसभरी, मदभरी कजलियाँ होंगी जो निशीथ की निस्तब्ध वेला में रात के सीने को चीर कर किसी कामातुर पक्षी की पुकार की तरह गूँज उठेंगी और लोगों को सोते से जगा देंगी। मैंने जिस गाने की एक कड़ी आपकी दिलचस्पी के

लिए कहानी के शुरू में रख दी है, वह वही है जो एक खास बुलन्द आवाज़ के रिक्शावाले के मुँह से एक तीर की तरह छूटी और आकर मेरे सीने में चुभ गयी। आँख खुल गयी। बड़ी कोशिश-काविश के बाद झपकी लगी थी। बड़ा गुस्सा आया। सो जाने पर गर्मी और मच्छर सबसे नजात मिल जाती है। अब फिर वही टखने खुजलाइए और करवटें बदलिए! वाह री मस्ती!

तभी किसी ने घर का दरवाजा जोरों से खटखटाया और मेरा नाम लेकर पुकारा।

'सत्यवान, अरे तुम इतनी रात को...'
'हाँ, अभी ही तो गाड़ी से उतरा हूँ।'
'यों अचानक? न चिट्ठी न पत्री?'
'चलो ऊपर सब बतलाता हूँ।'

ऊपर चलकर सत्यवान ने मुझे जो कुछ बतलाया वह अब मैं आपको बतला दूँ, अब किसी किस्म का डर नहीं है, सत्यवान थकान के मारे पड़ते ही सो गया है, अभी रात का सिर्फ डेढ़ बजा है और मैं मच्छर मारता पड़ा हूँ। कहानी कहना लाख बेमसरफ चीज़ सही, मगर मच्छर मारने से तो अच्छा ही है, इसलिए आइए आपको उसकी कहानी...उसकी प्रेम-कहानी....सुना दूँ....

मगर आप सबसे पहिले यह जानना चाहेंगे कि यह सत्यवान आखिर हैं कौन। बहुत मजे की चीज़ हैं, किसी जमाने में मेरे सहपाठी थे। हाई स्कूल से एम० ए० तक हम लोग साथ साथ पढ़े, पढ़ने में बड़ा तेज था सत्यवान, उसका सदा फर्स्ट क्लास आया, मगर दिमाग में उसके कोई कीड़ा जरूर था। गाँधीजी के आप परम भक्त थे, पढ़ने से जो वक्त बचता उसमें या तो अनासक्ति योग का पाठ करते या चर्खा चलाते, यहाँ तक कि

चर्खा-दंगलों में शरीक होते (कोई हद नहीं है इंसान के गदहपन की !)। त्याग और तपस्या का ऐसा भूत मेरे शेर पर सवार था कि वह मोटे से मोटा, बिल्कुल टाटनुमा खद्दर पहनता और कोल्हापुर का मोटा बदशकल चप्पल। यह तो हज़रत की हुलिया थी। और कीड़ा ? वह जो एक मर्तबा दिमाग़ में घुस गया तो घुस गया, उसे वहाँ से निकाले कौन।

हाँ सत्यवान में एक बात ऐसी थी जो मुझको भी बुरी न लगती थी : उसका सदा सबकी मदद को तैयार रहना। कुछ लोग उसकी भलमंसी का बेजा फायदा भी उठाते थे, मगर हमें उनसे क्या बहस। हमें तो सत्य वान से काम है। होस्टल में कोई बीमार पड़ा और फिर देखो सत्यवान को। और भी कोई काम किसी का अटकता तो वह सत्यवान को ही गुहार लगाता और सत्यवान भक्त की सहायता के लिए नंगे पैर ही दौड़ पड़ते। उन्हें विष्णु भगवान् का छोटा-मोटा अवतार ही समझिए, न जाने कितने गजों और अजामिलों को उन्होंने तारा होगा ! और इतना ही नहीं जनशिक्षा की जलती मशाल भी उनके हाथ में थी... और भाई, मेरी तरह कुछ नाकारे उसका मज़ाक़ भलेही उड़ा लें, लेकिन यह बात अपनी जगह पर अटल है कि उसके विंग का नौकर—भला-सा नाम था उसका.....हाँ, रामरूप—चार बरस में इतनी हिन्दी सीख गया था कि रात को सबका बिस्तर-विस्तर बिछाने के बाद खा पीकर प्रेमचन्द की कहानियाँ पढ़ा करता। दिन में लोगों के कालेज चले जाने पर मैंने भी उसे किताब हाथ में लिये देखा था। दूसरे नौकर जब खूब शोर मचाकर मेस में कोटपीस खेलते, रामरूप कहानी की किताब पढ़ता। यह सत्यवान की बरकत थी।..... हाँ तो भई यह बात तो सत्यवान में थी। इससे तो इनकार नहीं किया जा सकता।

लेकिन कीड़ा तो उसके दिमाग़ में था—कीड़ा यही कि उसे दुनिया की सफलता की ज़रा चिन्ता नहीं, कीड़ा यही कि उसे अपनी फ़िक्र कम दूसरे की फ़िक्र ज्यादा, बीमार कोई है नींद आपकी हराम है—यह दिमाग़

का कीड़ा नहीं तो और क्या है! इसी दिमाग़ के कीड़े ने जो जोर मारा तो सत्यवान जी जेल के फाटक के उस पार खड़े दिखायी दिये। सन् बयालिस में लोगों पर आम तौर से जो पागलपन छाया उससे सत्यवान भला कैसे अछूता रह सकता था। लिहाज़ा उन्होंने भी यहाँ-वहाँ दो एक तार के खंभे गिराये, छपरे के पास कहीं किसी रेल की पटरी के बोल्ट ढीले करने की कोशिश की और पकड़ गये। दो साल जेल में काटे। छूट कर आने के कुछ महीने बाद सुना कि सत्यवान कम्युनिस्ट हो गये। यह उनके दिमाग़ के कीड़े की नयी करवट थी। पता नहीं वह कीड़ा कभी उन्हें चैन लेने देगा भी या नहीं—

यह सत्यवान का अब तक का इतिहास है। हुलिया बतानी और बाकी है। गेहुआँ रंग, ज़रा ज्यादा गोल-सा मगर खुशनुमा चेहरा, चेहरे पर एक खास तरह की सादगी और स्वच्छता। मँझोला कद, धोती-कुर्ता पहनते हैं.....बस इतना काफी है, वह कोई छोकरी तो हैं नहीं कि मैं आपको उनकी आँख-कान-नाक सब का नक्शा बतलाऊँ और बतलाऊँ कि उनके बाल कितने बड़े हैं, बालों का क्या रंग है, आँखों का क्या रंग है, वगैरः वगैरः। सत्यवान तो अच्छे खासे मर्द हैं और अपनी मर्दुमी का सबूत देने ही तो काशी पधारे हैं।

हाँ तो अब आप उनकी प्रेम कहानी सुनने के अधिकारी हैं—

मगर सच पूछिए तो उनकी प्रेम कहानी में कोई दम नहीं है, कम से कम मेरी राय तो यही है। 'माया' की मार्च सन् ३७ या मई सन् ४१ या अगस्त सन् ४५ या जनवरी सन् ४७, कोई भी अंक उठा लीजिए, आपको वैसी एक नहीं ग्यारह कहानियाँ मिल जायेंगी। अरे वही पिटीपिटाई बात—मास्टर साहब ने ट्यूशन किया लड़की को अर्थशास्त्र या गणित पढ़ाने के लिए और.....और रफ़्ता रफ़्ता रफ़्ता रफ़्ता रफ़्ता रफ़्ता.....

.....और अब देखिए न सत्यवान को, आखिर क्यों बारह बजे रात मेरे ऊपर नाज़िल हुए हैं, इसीलिए न कि उन्हें शादी करनी है.....शादी

करनी है ! मगर यह क्या तरीका है, बाराती कहाँ हैं, बैण्ड कहाँ है, कुछ है या यों ही शादी होगी ? ! शादी करनी है, हिश्ट, अकेले आये चोरों की तरह और अब टाँग फैलाये मच्छड़ों से अपने को नुचवाते सो रहे हैं, ये शादी करेंगे, मुँह धो रखिए जनाब, यों शादी नहीं होती। शादी करनेवालों के चेहरे पर कुछ और ही नूर बरसता है।.....और साहब लड़की ? हज़ारीबाग़ में है.....खूब साहब, बड़ी खूब शादी होगी, दूल्हा बनारस में दुल्हन हज़ारीबाग़ में !.....आप बुरा मानें चाहे कुछ करें, मैं तो कहूँगा और हज़ार बार कहूँगा कि ये सब ढीलमढाल बातें मेरी समझ में खाक नहीं आतीं। मैं तो भाई, हार्डवेयर का व्योपारी हूँ और सब कुछ वैसा ही चाहता हूँ, लोहे की तरह पक्का, ठोस, बिलकुल फौलाद.....

दूसरे रोज़ दस बजे दिन तक लड़की भी आ गयी ; मगर वह अपने किसी और दोस्त के यहाँ ठहरी। तब तक मुझे यह राज़ मालूम हो गया था कि यह शादी आखिर हज़ारीबाग़ में न होकर यहाँ क्यों हो रही है। बात यह है कि लड़की और हमारे ये बौड़म दोस्त सत्यवान अपने माँ–बाप की मर्जी के खिलाफ यह शादी कर रहे हैं। लड़की बंगाली ब्राह्मण है और सत्यवान जी बिहारी कायस्थ। लड़की का बाप लखपती आदमी है, बहुत बड़ा लोहे का व्यापारी है (हूँ !), शहर में दर्जनों मकान हैं जो किराये पर उठे हुए हैं। वह सख्त मक्खीचूस सही, मगर है लखपती। और इधर बेचारे सत्यवान जी के पास कानी कौड़ी नहीं। यों हैं तो वह भी एक बिगड़े हुए रईस खानदान के। कभी उनके भी बड़ी ज़मींदारी थी, लेकिन सब लालपरी की नज़र हो गयी और अब तो काफी फटेहाली है, ज्यों-त्यों लाज निभाये चले जाते हैं। अगर ऐसा न भी होता, पैसे का अगर घर में अंबार भी लगा होता तो उससे क्या ? जरा सोचिए, घर है आपका मुज़फ्फ़रपुर, रहते हैं आप छपरा ; घर से एक पैसा नहीं लेते; कम्युनिस्ट पार्टी का

पूरे वक्त काम करते हैं और पार्टी से जो मजदूरी मिलती है उसी से काम चलाते हैं। पिछले तीन साल से हज़रत का यही दस्तूर है.....और इस वक्त तो उनके नाम वारंट है, इसीलिए छुपरे में उनकी शादी नहीं हो सकी और उन्हें अलग अलग बनारस आना पड़ा.....

मैं सदा से जानता था कि यह सत्यवान पूरी जिंदगी कुछ न कुछ ऊटपटाँग करता रहेगा! कालेज के दिनों में वह गांधी जी की भक्ति, वह बीमारों की तीमारदारी, वह लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर लोगों से मग़ज़मारी, फिर वह सन् बयालिस का बवंडर, जेल की हवा, फिर उनका वह कम्युनिस्ट हो जाना, वह गिरफ्तारी का वारंट और अब उनकी यह आखिरी कारगुज़ारी यह शादी—वह बड़ा बुरा कीड़ा घुसा है इसके दिमाग़ में, वह कभी इसको चैन से थोड़े ही बैठने देगा, योंही चक्कर खिलाता रहेगा... साहब, खूब चीज़ हैं यह सत्यवान! ठीक ही कहा है पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते हैं। मैं जानता था, खूब जानता था कि यह आदमी कोई न कोई सख्त बौड़मपने की बात करेगा। मैं फिर कहता हूँ आप ही सोचिए, ऐसी शादी के भी भला कोई माने हैं? आप एक गाड़ी से चले आ रहे हैं अकेले, आपकी दुल्हन दूसरी गाड़ी से चली आ रही है अकेली, न आपके संग कोई भूत न उसके संग कोई चिड़िया का पूत! अजी, तुफ़ है ऐसी शादी पर। शादी के माने तो साहब यह हैं कि नगाड़े पर चोट पड़ रही है, बैंड बज रहा है, नया जामा-जोड़ा पहने, सर पर मौर लगाये, सर से पैर तक आप और आपके बराती अच्छी तरह मुअत्तर चले जा रहे हैं चाँद-सी दुल्हन लाने.....मैं तो भई ऐसी ही शादी करूँगा, मुझे यह नकटापन ज़रा नहीं भाता। माना कि आप बहुत पढ़े-लिखे हैं, आपकी बीवी बहुत पढ़ी-लिखी है (जी हाँ, वह भी एम० ए० पास है), माना कि आप बहुत बड़े क्रान्तिकारी हैं जिसके पीछे पुलिस के गिरोह गश्त लगा रहे हैं, यह सब ठीक; मगर तब भी हर चीज़ को करने का एक ढंग होता है, एक सलीक़ा होता है। आखिर आप क्यों अच्छी धुली-पुँछी चमकती हुई थाली

और कटोरियों में खाना खाते हैं, हाथ पर रोटी रख लीजिए और खाइए, वैसे भी रोटी जायगी तो पेट ही में.....

शाम को शादी थी। आर्यसमाजी रीति से। मुझे बड़ी बेचैनी थी कि कब वक्त आये और मैं सत्यवान की होनेवाली पत्नी को देखूँ। मैंने मन ही मन उसकी एक तसवीर भी खड़ी कर ली थी। बंगाली तरुणियों की कल्पना करने पर एक खास तरह के लावण्य की छवि मेरी आँखों में खिंच जाती है। उनकी हथेलियों की वह मेंहदी, उनके पैरों का वह आलता, उनके माथे की वह बिन्दी, उनके चेहरे का वह पीला-सा रंग जो न तो खिले हुए फूल का है न मुरझाये हुए फूल का, और फिर उनका साड़ी लपेटने का वह ख़ास ढंग।

कमरे में ही विवाह की वेदी बनी थी। आग जल रही थी लिहाज़ा उसके दिल से धुआँ निकल रहा था, बेहद धुआँ। लेकिन वह ठीक से जले इस ख़याल से बिजली का पंखा भी बंद कर दिया गया था, मगर आग से तब भी धुएँ के बादल उठ रहे थे और हमारे जिस्मों से पसीने का पनाला बह रहा था। लोग काफी बौखलाये हुए से दुल्हन के आने का इंतज़ार कर रहे थे—

—आखिर दुल्हन को उसकी सहेलियाँ सहारा दिये हुए लायीं.....

.....और मैं बेहोश होते होते बचा—मेरे भीतर जो ख़ूबसूरती का एक्सपर्ट बैठा हुआ था वह तो बेहोश हो ही गया। मेरी कल्पना का रेशमी पर्दा तार-तार हो गया, मेरी आशाओं का रंगमहल जमीन पर गिरकर रकाबी की तरह चूर चूर हो गया और मुझे लगा कि किसी ने मुझे धरहरे से नीचे धकेल दिया है और मैं गिरता चला जा रहा हूँ गिरता चला जा रहा हूँ। पता नहीं मैं कब तक इसी तरह गिरता रहा। आखिरकार जब मेरे पैर ज़मीन पर लगे और मेरी बेहोशी दूर हुई तो मैंने

देखा कि सत्यवान की शादी एक मोटी, ठिंगनी, स्याह लड़की से हो रही है, आर्यसमाजी पंडित जी जनेऊ का मंत्र शादी के अवसर पर पढ़ रहे हैं, आग अब कुछ लौ देने लगी है.....

.....और उसी लौ की रोशनी में मैं देख रहा हूँ कि दोनों के चेहरे पर एक अनोखी दीप्ति है, जो सामने जलती हुई आग की चमक नहीं है बल्कि भीतर झरते हुए अनगिनत झरनों की एक ऐसी ताज़गी है जो कभी बासी नहीं पड़ेगी, जिससे पीपल की कोंपलों की तरह इंक़लाब की नित नयी कोंपलें फूटेंगी.....